माननीय स्वतंत्र कुमार, न्यायमूर्ति के समक्ष

आर. सी. गोयनका-याचिकाकर्ता
बनाम
सोम नाथ जैन-प्रतिवादी

सी.आर.एल. एम. नं. 7961/एम 1995.

9 फ़रवरी 1996.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482-कार्यवाहियों पर रोक-क्या उन्हीं तथ्यों से उत्पन्न होने वाली आपराधिक कार्यवाहियों, जिनके आधार पर दावा पहले से ही सिविल न्यायालय में लंबित है, पर रोक लगाई जा सकती है-यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालयों को कानून के दुरुपयोग, किसी पक्ष को शर्मिंदा करने को रोकना चाहिए और इस बारे में संभावित विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक मामला बनता है-यदि आपराधिक कानून के तहत कार्यवाहियों को मुख्य रूप से उत्पीड़न के उद्देश्य से शुरू किया जाता है, तो रोक दी जानी चाहिए।

अभिनिर्धारित किया गया कि आपराधिक मामले में कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए मानक निर्धारित करने में कोई कठोर या स्ट्रैट जैकेट फॉर्मूला नहीं हो सकता है, जबकि दीवानी कार्यवाही सक्षम न्यायशास्त्र के न्यायालय के समक्ष लंबित है। मूल रूप से न्यायालय विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग, मुकदमेबाजी की बहुलता और किसी भी कार्यवाही की हताशा की संभावना को रोकने के लिए चिंतित होगा।

(पैरा 4)

आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि वी. एम. शाह बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य मामले में, जे.टी. 1995 (6) एस.सी. 433 , उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाहियों को वरीयता देने की आवश्यकता व्यक्त की, लेकिन यह कहा कि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य कारकों के अलावा शर्मिंदगी की संभावना को प्रासंगिक विचार के रूप में माना।

(पैरा 5)

इसके अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि आपराधिक कानून के तहत कार्यवाही मुख्य रूप से दूसरे पक्ष को परेशान करने और शर्मिंदगी पैदा करने के उद्देश्य से शुरू की जाती है तो यह कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान होगी। मुकदमेबाजी की अनावश्यक बहुलता को रोका जाना चाहिए।

(पैरा 5)

इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया गया कि इन निर्णयों के आधार पर मूल निष्कर्ष यह है कि न्यायालय को कानून के दुरुपयोग, किसी पक्ष को अनावश्यक रूप से शर्मिंदा करने और इस बारे में संभावित विचार को रोकना चाहिए कि क्या आपराधिक अपराध किया गया है।

(पैरा 6)

याचिकाकर्ता की ओर से आर. सी. भल्ला, अधिवक्ता और जे. सी. नागपाल, अधिवक्ता।

प्रतिवादी की ओर से ए.एस. चीमा, वरिष्ठ अधिवक्ता और डी.पी. सिंह, अधिवक्ता।

<u>निर्णयों</u>

स्वतंत्र कुमार, न्यायाधीश

(1) विचारार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उन्हीं तथ्यों से उद्भूत आपराधिक कार्यवाहियों, जिनके आधार पर दावा पहले से ही सिविल न्यायालय में न्यायनिर्णयन के लिए लंबित है, पर सिविल न्यायालय द्वारा निर्णय किए जाने तक रोक लगाई जा सकती है।

(2) याचिकाकर्ता स्टॉक एक्सचेंज, बॉम्बे का सदस्य है जो बॉम्बे में व्यवसाय करता है और प्रतिभूति (विनियमन) अधिनियम, 1956 के तहत बनाए गए नियमों, उपनियमों और विनियमन 1957 द्वारा शासित है। जून 1991 में कहीं प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता से संपर्क किया और शेयरों की खरीद और बिक्री के उद्देश्य से स्टॉक एक्सचेंज बॉम्बे में अपनी धनराशि निवेश करने की इच्छा व्यक्त की। इस प्रकार, प्रत्यर्थी अपने नाम पर और अपने परिवार के सदस्यों के नाम पर भी शेयर खरीदना चाहता था। अगस्त 1991 के पहले सप्ताह में याचिकाकर्ता को इस उद्देश्य के लिए प्रत्यर्थी से बॉम्बे में देय 7 लाख रुपये के दो मसौदे प्राप्त हुए। प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता को स्टॉक एक्सचेंज, बॉम्बे में अपने नाम या अपने परिवार के सदस्यों के नाम पर शेयर खरीदने या बेचने का निर्देश दिया। निर्देशों के अनुसार, जुलाई, 1991 से नवंबर, 1991 तक पांच महीने की अवधि में शेयरों की खरीद और बिक्री की गई। निर्देशों के अनुसार आदेश के निष्पादन पर, अनुबंध नोट नियमित रूप से उन्हें वितरित किए जाते थे और यहां तक कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए खाते और बिलों के विवरण भी प्रतिवादी को भेजे जाते थे। याचिकाकर्ता के अनुसार, शेयरों की खरीद और बिक्री में यह निवेश विशुद्ध रूप से सट्टा लगाने और जल्दी पैसा कमाने के लिए था। याचिकाकर्ता का आरोप है कि कुछ अवसरों पर प्रतिवादी को लाभ हुआ लेकिन जब उन्हें एहसास हुआ कि वे हार रहे हैं और याचिकाकर्ता को भुगतान करने की आवश्यकता है, तो उन्होंने विवाद उठाए। याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रत्यर्थी द्वारा किए जा रहे विवादों और भारी दावे के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने 15 दिसंबर, 1992 को स्टॉक एक्सचेंज बोर्ड, बॉम्बे के समक्ष एक आवेदन दायर किया जिसमें अनुरोध किया गया कि विवादों और मतभेदों को मध्यस्थ को भेजा जाए। यह आवेदन बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज नियमों के खंड 248(ए) के तहत दायर किया गया है जो इस प्रकार है:-

"सभी दावे, चाहे किसी सदस्य और गैर-सदस्य या गैर-सदस्य के बीच मतभेद और विवाद स्वीकार किए गए हों या नहीं (" गैर-सदस्य "और" गैर-सदस्य "की शर्तों में एक ज्ञापनकर्ता, अधिकृत क्लर्क या कर्मचारी या कोई अन्य व्यक्ति शामिल होगा, जिसके साथ सदस्य एक्सचेंज के नियमों, उपनियमों और विनियमों के अधीन किए गए लेन-देन, लेनदेन और अनुबंधों से या उनके संबंध में उत्पन्न होने वाले ब्रोकरेज को साझा करता है या उसके संबंध में या उसके अनुसरण में या निर्माण, पूर्ति या वैधता या अधिकार, दायित्वों और देनदारियों के संबंध में संबंधित है।

अनुबंध मध्यस्थता समझौतों का गठन करता है :

(ख) उपखंड (क) में यथा उपबंधित माध्यस्थम् के अधीन या उसमें सम्मिलित माध्यस्थम् के लिए इस उपबंध की स्वीकृति, चाहे वह व्यक्त हो या निहित हो या कोई संविदा, सदस्य और गैर-सदस्य या गैर-सदस्यों के बीच एक करार का गठन करेगी और यह समझा जाएगा कि अनुबंध की तारीख से पहले या बाद की तारीख के सभी लेन-देनों, लेन-देनों और अनुबंधों के संबंध में उपखंड (क) में निर्दिष्ट प्रकृति के सभी दावे (चाहे स्वीकार किए गए हों या नहीं) मतभेद और विवाद विनिमय के नियमों, उपनियमों और विनियमों में यथा उपबंधित माध्यस्थम् को प्रस्तुत किए जाएंगे और विनिश्चय द्वारा विनिश्चय किए जाएंगे और इसके संबंध में यह कि क्या ऐसे लेन-देन, और अनुबंध किए गए हैं या नहीं, यह प्रश्न भी मध्यस्थता के नियमों, उपनियमों और विनिमय विनियमों में यथा उपबंधित माध्यस्थम् को प्रस्तुत और विनिश्चय द्वारा विनिश्चय किया जाएगा।"

उपविधि 274 इस प्रकार है -

"अनुबंधों का संचालन। सभी लेन-देन, लेन-देन और अनुबंध जो एक्सचेंज के नियमों, उपनियमों और विनियमों के अधीन हैं, उन्हें एक्सचेंज के नियमों, उपनियमों और विनियमों के अधीन माना जाएगा और बॉम्बे शहर में पूरी तरह से किए गए और किए जाने वाले प्रभावी माने जाएंगे और ऐसे लेनदेन, अनुबंध या समझौतों के पक्षों को एक्सचेंज के नियमों, उपनियमों और विनियमों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से बॉम्बे में अदालतों के अधिकार क्षेत्र में प्रस्तुत किया गया माना जाएगा। "

(3) इस याचिका में प्रत्यर्थी ने मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 33 के तहत श्री आर. के. बिश्नोई, उप न्यायाधीश, चंडीगढ़ के न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की, जिसने 25 फरवरी, 1993 को एक एकतरफा आदेश पारित किया, जिसमें कमल नागरा (संदर्भ संख्या 3) के खिलाफ निषेधाज्ञा दी गई थी।
(4) प्रतिवादी ने राज्य उपभोक्ता निपटान आयोग, चंडीगढ़ से भी संपर्क किया जहां उनके दावे को स्वीकार नहीं किया गया। उन्होंने शिकायतकर्ता की ओर से कथित अनुचित व्यापार प्रथा, सेवा में कमी और विरोधी पक्ष, एक शेयर और स्टॉक ब्रोकर द्वारा शेयरों की खरीद में वास्तविक मूल्य से अधिक शुल्क लेने के संबंध में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, नई दिल्ली के समक्ष अपील की। इस याचिका को राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग ने 21 अक्टूबर, 1993 को अपने आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था। 21 अक्टूबर, 1993 के आदेश को प्रत्यर्थी द्वारा भारत के सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी और सिविल अपीलों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 3 फरवरी 1994 के अपने आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने तब 27 जुलाई, 1994 को वरिष्ठ उप न्यायाधीश, चंडीगढ़ की अदालत में मूलधन राशि के रूप में 11,40,000 रुपये यानी 8,91,000 रुपये और ब्याज के रूप में 2,48,950 रुपये की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। मुकदमे में प्रतिवादी ने दावा किया था कि शेयरों की बिक्री के संबंध में पक्षों के बीच समझ का उल्लंघन हुआ था और दूसरा पक्ष पूर्ण खातों का खुलासा नहीं कर रहा था। शेयरों के सौदे वास्तविक नहीं थे और उन्हें धोखा दिया जा रहा था। शिकायत में यह स्वीकार किया गया है कि पैसा निवेश के उद्देश्य से दिया गया था। जब याचिकाकर्ता को वाद में समन दिया गया, तो उसने पक्षकारों के बीच मध्यस्थता समझौते के मद्देनजर वाद पर रोक लगाने के लिए मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 24 के तहत एक आवेदन दायर किया। इसके बाद प्रतिवादी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, चंडीगढ़ की अदालत में भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी/409/420 के तहत शिकायत दर्ज कराई। दिनांक 29 नवंबर, 1994 के आदेश द्वारा, विद्वान मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के साथ पठित धारा 420 के तहत अपराध के लिए तलब किया। दिनांक 29 नवंबर, 1994 के समन के आदेश के पैरा संख्या 6 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा:-

"मैंने मामले के तथ्यों और फाइल पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्यों को देखने के अलावा शिकायतकर्ता के वकील को सुना है। 7 लाख रुपये की राशि भेजी गई-2 लाख रुपये और 5 लाख रुपये के ड्राफ्ट प्रदर्शनी पी-1 के माध्यम से। शेष दस्तावेजों ने प्रथम दृष्टया एक मामला स्थापित किया कि शिकायतकर्ता ने सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त करने के लिए अभियुक्त को यह काम सौंपा था जिससे शिकायतकर्ता को लाभ प्राप्त हुआ, लेकिन लाभ में हेरफेर किया गया ताकि शिकायतकर्ता को धोखा दिया जा सके । इस स्तर पर, आईपीसी की धारा 120-बी के साथ धारा 420 के तहत अपराध के लिए आरोपी को तलब करने का प्रथम दृष्टया मामला है और तदनुसार आरोपी को उक्त अपराध के लिए तलब करने का आदेश दिया जाता है।"

शिकायतों की प्रति के साथ-साथ प्रतिवादी द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालयों में दायर की गई शिकायत की प्रति को इस मामले के रिकॉर्ड में रखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आरोप, यदि इन कार्यवाही में समान नहीं हैं, तो काफी समान हैं। कम से कम इन दोनों कार्यवाही में मूल कारण समान है - शेयरों की खरीद और बिक्री में निवेश के उद्देश्य से 7 लाख रुपये भेजना। निर्देशों और समझौते के अनुसार, यह आरोप लगाया जाता है कि यहाँ उल्लंघन और नुकसान आदि का परिणामी परिणाम है। ऊपर निर्दिष्ट विभिन्न दीवानी कार्यवाही अधिकार क्षेत्र के सक्षम न्यायालयों में लंबित हैं। इसमें प्रत्यर्थी ने आपराधिक अपराध के लिए कार्यवाही शुरू नहीं की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि जब प्रत्यर्थी राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के समक्ष दीवानी कार्यवाही में सफल नहीं था और उसे बॉम्बे में कार्यवाही का नोटिस भी दिया गया था और यहां तक कि अपना मुकदमा दायर करने का भी, तो उसने इन आपराधिक कार्यवाही को शुरू करने के बारे में सोचा। याचिकाकर्ता ने अधिकार क्षेत्र के आधार पर विभिन्न कार्यवाही का विरोध किया है और साथ ही उनके अनुसार, चंडीगढ़ में प्रतिवादी के पक्ष में और याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्रवाई का कोई कारण सामने नहीं आया है। इस प्रकार, संबंधित न्यायालयों की अधिकारिता के साथ-साथ मामले के गुण-दोष के संबंध में पक्षों के बीच गंभीर विवाद हैं। इन कार्यवाहियों में विवाद निश्चित रूप से काफी हद तक दीवानी कार्यवाहियों के साथ मिश्रित हैं, क्योंकि दीवानी न्यायालय द्वारा दिया गया कोई भी निष्कर्ष आपराधिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले अन्य न्यायालय पर बाध्यकारी है। यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि आपराधिक मामले में कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए कोई

कठोर या स्ट्रैट जैकेट फॉर्मूला नहीं हो सकता है, जबकि दीवानी कार्यवाही अधिकार क्षेत्र के सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित है। मूल रूप से न्यायालय विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग, मुकदमेबाजी की बहुलता और किसी भी कार्यवाही की हताशा की संभावना को रोकने के लिए चिंतित होगा।

(5) राम सुमेर पुरी महांत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में (1) उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः -

"इस स्थिति पर संदेह या विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि दीवानी अदालत का फरमान हमारे सामने वाले मामले जैसे मामले में आपराधिक अदालत पर बाध्यकारी है। प्रत्यर्थी 2-5 के लिए अधिवक्ता इस प्रस्ताव को चुनौती देने की स्थिति में नहीं था कि समानांतर कार्यवाहियों को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और सिविल न्यायालय की डिक्री की स्थिति में, आपराधिक न्यायालय को अपनी अधिकारिता का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, विशेष रूप से जब सिविल न्यायालय द्वारा कब्जे की जांच की जा रही हो और पक्षकार विवाद के लंबित होने के दौरान संपत्ति की पर्याप्त सुरक्षा के लिए निषेधाज्ञा या रिसीवर की नियुक्ति जैसे अंतरिम आदेशों के लिए सिविल न्यायालय से संपर्क करने की स्थिति में हों। मुकदमेबाजी की बहुलता पक्षों के हित में नहीं है और न ही अर्थहीन मुकदमेबाजी पर सार्वजनिक समय बर्बाद करने की अनुमति दी जानी चाहिए।"

हाल ही में वी. एम. शाह बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य (2) शीर्षक वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को प्राथमिकता देने की आवश्यकता व्यक्त की, लेकिन कहा कि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य कारकों के अलावा शर्मिंदगी की संभावना को प्रासंगिक विचार के रूप में माना। वर्तमान मामले में, दोनों पक्षों द्वारा अलग-अलग दीवानी मुकदमे शुरू किए गए थे और वे लंबित हैं, सिवाय इसके कि प्रतिवादी द्वारा राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के समक्ष कार्यवाही को खारिज कर दिया गया था। आपराधिक कानून के तहत कार्यवाही यदि मुख्य रूप से दूसरे पक्ष को परेशान करने और शर्मिंदा करने के उद्देश्य से शुरू की जाती है तो यह कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान होगी। मुकदमेबाजी की अनावश्यक बहुलता को रोका जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने सपीन्दर सिंह और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (3) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर यह तर्क देने के लिए भरोसा किया है कि राशि और परिणामी हानि की गैर-वापसी मुख्य रूप से एक नागरिक दायित्व है और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 या 420 के तहत अपराध का गठन नहीं करता है। विद्वान वकील बाबू सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (4) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा करते हैं।

(6) प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार और अन्य (5) के मामले पर यह तर्क देने के लिए भरोसा किया है कि शिकायतकर्ता को अपना मामला साबित करने का मौका दिया जाना था। वर्तमान मामले में, वर्तमान याचिका शिकायत को रद्द करने के लिए नहीं है, बल्कि केवल दीवानी कार्यवाही लंबित होने तक आपराधिक न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए है। इस प्रकार प्रतिभा रानी (उपर्युक्त) का मामला वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। इस विषय पर कुछ निर्णयों का संदर्भ देना उचित होगा- कुशेश्वर डेबे बनाम मेसर्स भारत कोकिंग लिमिटेड और अन्य (6), रविंदर कौर वेदी बनाम जे.एस. बेदी (7), टैक्समैको लिमिटेड बनाम अरुण कुमार (8) । इन निर्णयों के आधार पर मूल निष्कर्ष यह है कि न्यायालय को कानून के दुरुपयोग, किसी पक्ष को अनावश्यक रूप से शर्मिंदा करने और इस बारे में संभावित विचार को रोकना चाहिए

(1) (1985) 1 एस.सी.सी.429
(2) जे.टी. 1995 (6) एस.सी. 433
(3) 1992 (2) एस.सी. केस 67
(4) 1991 (2) सी.सी. मामले 421
(5) 1985 एस.सी. 628
(6) ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 2118
(7) 1988 (2) डी.एल. 348
(8) 1990 (3) डी.एल. 63

कि क्या आपराधिक अपराध किया गया है। इसके अलावा न्यायालय प्रतिरक्षा के प्रति पूर्वाग्रह, किसी भी कार्यवाही की हताशा और सबसे महत्वपूर्ण इस बात से भी संबंधित होगा कि क्या दीवानी न्यायालय के निष्कर्षों का आपराधिक न्यायालय के समक्ष विवाद पर प्रत्यक्ष या प्रभावी प्रभाव पड़ेगा।

(7) वर्तमान मामले में, धोखाधड़ी और हानि के आरोप आम हैं। आरोप है कि पैसा प्रतिनिधि को सौंपा गया था, जबकि प्रतिवादी के अनुसार, पैसा उसे निवेश के उद्देश्य से बॉम्बे में दिया गया था। केवल यह तथ्य कि प्रत्यर्थी ने खाते को कथित रूप में प्रस्तुत नहीं किया है या याचिकाकर्ता को कुछ नुकसान पहुंचाया है, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। यदि सिविल कोर्ट यह निर्णय लेता है कि धन निवेश के उद्देश्य से और लाभ कमाने के लिए सट्टा मन से दिया गया था, तो यह गंभीरता से लिया जाना चाहिए कि क्या यह विश्वासघात के रूप में कथित या धोखाधड़ी के रूप में हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपराधिक और दीवानी न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में परस्पर निर्भर है। यहाँ प्रत्यर्थी ने स्वयं उन भौतिक मुद्दों पर सिविल न्यायालय से निष्कर्ष आमंत्रित किए हैं जो आपराधिक कार्यवाही पर प्रभाव डालने के लिए बाध्य हैं। वर्तमान प्रकार के मामलों में आपराधिक कार्यवाही को शुरू में असफल दीवानी मुकदमेबाजी या दीवानी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले न्यायालय द्वारा पारित किए जा रहे कुछ प्रतिकूल आदेशों के रूप में अनुमति नहीं दी जा सकती है। ऐसी परिस्थितियों में उनके बने रहने को कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग कहा जाएगा। यदि दीवानी न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए अनुरोध के अनुसार धोखाधड़ी के निष्कर्ष को स्वीकार करता है, तो याचिकाकर्ताओं के खिलाफ इन अपराधों के लिए कार्यवाही की जाएगी और तब तक इन कार्यवाही पर रोक लगाना उचित होगा। यह शिकायत अगस्त 1994 में वर्ष 1991 के लेन-देन के संबंध में दर्ज की गई थी। यह अत्यधिक देरी जो स्पष्ट रूप से अस्पष्ट बनी हुई है, एक अन्य कारक है जो न्यायालय के साथ वजन कर रहा है। इसके अलावा, यह प्रामाणिक रूप से शुरू की गई कार्यवाही के बजाय याचिकाकर्ताओं को परेशान करने का प्रयास प्रतीत होता है।

(8) उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, याचिका को इस हद तक अनुमति दी गई है कि 16 अगस्त, 1994 की आपराधिक शिकायत संख्या 214, जिसका शीर्षक एस. एन. जैन बनाम आर. सी. गोयनका और अन्य है और चंडीगढ़ के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट श्री शेखर धवन के न्यायालय में लंबित है, में लंबित कार्यवाहियों पर चंडीगढ़ के सिविल न्यायालय में याचिकाकर्ता द्वारा दायर मुकदमे में कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान रोक रहेगी। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्द्मेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

रजत कुमार कनौजिया

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी,

फ़रीदाबाद,हरियाणा